

## अनेकान्तवाद और सर्वोदयवाद

डॉ० भागचन्द्र जैन

अनेकान्तवाद सत्य और अहिंसा की भूमिका पर प्रतिष्ठित तीर्थंकर महावीर का सार्वभौमिक सिद्धान्त है जो सर्वधर्म-समभाव के चिन्तन से अनुप्राणित है। उसमें लोकहित और लोकसंग्रह की भावना गभित है। धार्मिक, राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को दूर करने का अमोघ अस्त्र है। समन्वयवादिता के आधार पर सर्वथा एकान्तवादियों को एक प्लेट-फार्म पर ससम्मान बैठाने का उपक्रम है। दूसरे के दृष्टिकोण का अनादर करना और उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना ही संघर्ष का मूल कारण होता है। संसार में जितने भी युद्ध हुए हैं उनके पीछे यही कारण रहा है। अतः संघर्ष को दूर करने का उपाय यही है कि हम प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र के विचारों पर उदारता और निष्पक्षता पूर्वक विचार करें। उससे हमारा दृष्टिकोण दुराग्रही अथवा एकांगी नहीं होगा।

सर्वोदयवाद आधुनिक काल में गांधीयुग का प्रदेय माना जाता है। गांधी जी ने रश्किन की पुस्तक “अन टू दी लास्ट” का अनुवाद “सर्वोदयवाद” शीर्षक से किया और तभी से उसकी लोकप्रियता में बाढ़ आयी। यहां सर्वोदयवाद का तात्पर्य है—प्रत्येक व्यक्ति को लौकिक जीवन के विकास के लिए समान अवसर प्रदान किया जाना। इसमें पुरुषार्थ का महत्त्व तथा सभी के साथ स्वयं के उत्कर्ष का संबंध भी जुड़ा हुआ है। गांधी जी के इस सिद्धान्त को विनोबा जी ने कुछ और विशिष्ट प्रक्रिया देकर कार्य क्षेत्र में उतार दिया।

सर्वोदयवाद वस्तुतः आधुनिक चेतना की देन नहीं। उसे यथार्थ में महावीर ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र की विषमता को देखकर क्रान्ति के तीन सूत्र दिये—१. समता २. शमता और ३. श्रमता। समता का तात्पर्य है सभी व्यक्ति समान हैं। जन्म से न तो कोई ब्राह्मण है, न क्षत्रिय, न वैश्य है, न शूद्र है। मनुष्य तो जाति नामकर्म के उदय से एक ही है। आजीविका और कर्म के भेद से अवश्य उसे चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

मनुस्यजातिरेकैव जातिकर्मोदयोद्भवः।

वृत्तिभेदाहिताद् भेदाच्चातुर्विधमिहाश्नुते ॥—जिनसेनाचार्य, आदिपुराण

शमता कर्मों के समूल विनाश से सम्बद्ध है। इस अवस्था को निर्वाण कहा जाता है और श्रमता से मतलब है व्यक्ति का विकास उसके स्वयं के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है, ईश्वर आदि की कृपा पर नहीं। ये तीनों सूत्र व्यक्ति के उत्थान के मूल सम्बल हैं। इनका मूल्यांकन करते हुए ही अनेकान्तवाद—स्याद्वाद के प्रतिष्ठापक आचार्य समन्तभद्र ने तीर्थंकर महावीर की स्तुति करते हुए युक्त्यनुशासन में उनके तीर्थ को सर्वोदयतीर्थ कहा है :—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं

सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्ष्यम् ।

सर्वापदामन्तकरं निरन्तं

सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥

प्राचीन काल से ही समाजशास्त्रीय और अशास्त्रीय विसंवादों में जूझता रहा है, बुद्धि और तर्क के आक्रमणों को सहता रहा है, आस्था और ज्ञान के थपेड़ों को झेलता रहा है। तब कहीं एक लम्बे समय के बाद उसे यह अनुभव हुआ कि इन बौद्धिक विषमताओं के तीखे प्रहारों से निष्पक्ष और निर्वैर होकर मुक्त हुआ जा सकता है, शान्ति की पावन धारा में संगीतमय गीते लगाये जा सकते हैं और वादों के विषैले घेरे को मिटाया जा सकता है। इसी तथ्य और अनुभूति ने अनेकान्तवाद को जन्म दिया और इसी ने सर्वोदयवाद की संरचना की।

वैयक्तिक और सामुदायिक चेतना शान्ति की प्राप्ति के लिए सदैव से जी तोड़ प्रयत्न करती आ रही है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य

जैन तत्त्व चिन्तन : आधुनिक संदर्भ

२६

है। पर शान्ति वस्तुतः बाहर से खोजने की वस्तु नहीं। वह तो आन्तरिक समता, सहयोग, संयम और समन्वय से उद्भूत आनुभूतिक तथ्य है जो समाज के पारस्परिक व्यवहार को निर्मल स्पष्ट और प्रेममय बना देता है। माया, छल, कपट और प्रवचना में पली-पुसी जिन्दगी अर्थहीन होती है। दानवता के क्रूर शिकंजों में दबे हुए आदर्शों के कंगूरे उस जिन्दगी से कट जाते हैं। युद्धों और आक्रमणों की भाषायें सजीव हो उठती हैं। मानसिक शान्ति और सन्तुलन के तटों में बहती आत्मिक शान्ति का सरित प्रवाह अपने तटों से निर्मुक्त होकर बहने के लिए उछलने लगता है। एक नया उन्माद मानवता के शान्त और स्थिर कदमों में आघाती झंझावात पठेल देता है। ऐसी स्थिति में शान्ति का मार्ग-द्रष्टा समन्वय चेतना की ओर पग बढ़ाता है और अपनी समतामयी विचार धारा से अशान्त वातावरण को प्रशान्त करने का प्रयत्न करता है।

मानवीय एकता, सह-अस्तित्व, समानता और सर्वोदयता धर्म के सभी अंग हैं। तथाकथित धार्मिक विद्वान् और आचार्य इन अंगों को तोड़-मरोड़कर स्वार्थवश वर्गभेद और वर्णभेद जैसी विचित्र धारणाओं की विषैली आग को पैदा कर देते हैं जिसमें समाज की भेड़िया धसान वाली वृत्ति वैचारिक धरातल से असंबद्ध होकर कूद पड़ती है। उसके सारे समीकरण झुलस जाते हैं। दृष्टि में हिंसक व्यवहार अपने पूरे शक्तिशाली स्वर में गूँजने लगता है, शोषण की मनोवृत्ति सहानुभूति और सामाजिकता की भावना को कुठित कर देती है। वैयक्तिक और सामूहिक शान्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। इस दुर्वस्था की सारी जिम्मेदारी एकान्तवादी चिन्तकों के सबल हिंसक कंधों पर है जिसने समाज को एक भटकाव दिया है, अशान्ति का एक आकार प्राकार खड़ा किया है और पड़ौसी को पड़ौसी जैसा रहने में संकोच वितृष्णा और मर्यादाहीन भरे व्यवहारों की लौहिक दीवाल को गढ़ दिया है।

अनेकान्तवाद और सर्वोदयवाद इन सभी प्रकार की विषमताओं से आपादभग्न समाज को एक नई दिशा दान देता है। उसकी कटी पतंग को किसी तरह सम्हालकर उसमें अनुशासन तथा सुव्यवस्था की सुस्पष्ट, मजबूत और सामुदायिक चेतना से सनी डोर लगा देता है। आस्था और ज्ञान की व्यवस्था में नया प्राण फूंक देता है तब संघर्ष के स्वर बदल जाते हैं। समन्वय की मनोवृत्ति, समता की प्रतिध्वनि, सत्यान्वेषण की चेतना गतिशील हो जाती है। अपने शास्त्रीय व्यामोह से मुक्त होने के लिए अपने वैयक्तिक एक पक्षीय विचारों की आहूति देने के लिए और निष्पक्षता, निर्वैरता, निर्भयता की चेतना के स्तर पर मानवता को धूल धूसरित होने से बचाने के लिए।

पदार्थ है अनन्त और असीमित गुण—पर्यायों का पुंज और संसारी है सान्त और सीमित बुद्धि सम्पन्न। दोनों के गुणों में पूर्ण पश्चिम का अन्तर है। दोनों के संदर्भ एक होते हुए भी अनन्त हैं। पर विडम्बना यह है कि सीमित असीमित को अपनी बाहों में समेट लेना चाहता है अपने थोथे ज्ञान और बल के आधार पर, पाक्षिक भावना और तर्क के वश होकर। वह आंखें मूंद लेता है वैज्ञानिक तथ्य से और इन्कार कर देता है सार्वजनीन उपयोगिता को। बस यहीं अक्षर-अक्षर लड़ने भिड़ने लगते हैं। और तथ्य अनावृत्त होकर सुप्त हो जाते हैं। नई आस्थाएँ पुरानी आस्थाओं से टकराने लगती हैं। परिभाषायें बदलने लगती हैं। फलतः स्वयं की खोज कोसों दूर होकर सिसकने लगती है, जीवन का लक्ष्य कुछ और हो जाता है। जीवन-जीवन नहीं रहता। वह भार बन जाता है। अनैतिकता के साये में।

इस प्रकार की अज्ञानता और अनैतिकता के अस्तित्व को मिटाने तथा शुद्ध-ज्ञान और चारित्र्य का आचरण करने की दृष्टि से अनेकान्तवाद और सर्वोदयवाद एक अमोघ सूत्र हैं। समता की भूमि पर प्रतिष्ठित होकर आत्मदर्शी होना इसके लिए आवश्यक है। समता मानवता की सही परिभाषा है। समन्वय वृत्ति उसका हर अक्षर है, निर्मलता और निर्भयता उसका फुल स्टोप है, निराग्रही वृत्ति और असम्प्रदायिकता उसका पैराग्राफ है।

अनैकान्तिक और सर्वोदय चिन्तन की दिशा में आगे बढ़ने वाला समाज पूर्ण अहिंसक और आध्यात्मिक होगा। सभी के उत्कर्ष में सहायक होगा। उसके साधन और साध्य पवित्र होंगे। तर्क शुष्कता से हटकर वास्तविकता की ओर बढ़ेगा। हृदय परिवर्तन के माध्यम से सर्वोदय की सीमा को छुएगा। चेतना, व्यापार के साधन इन्द्रियाँ और मन संयमित होंगे। सत्य की प्रामाणिकता असन्दिग्ध होती चली जायेगी। सापेक्षित चिन्तन व्यवहार के माध्यम से निश्चय तक क्रमशः बढ़ता चला जायेगा। स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर, बहिरंग से अंतरंग की ओर, सांख्यावहारिक से पारमार्थिक की ओर, ऐन्द्रियक ज्ञान से आत्मिक ज्ञान की ओर।

शब्द वस्तु का प्रतिनिधित्व नहीं करते। वे तो हमारी अनुभूति को व्यक्त करते हैं। अनुभूति की परिधि भी ससीम और विविध होती है इसलिए उनकी क्रमिक अभिव्यक्ति होती है। वस्तु के अनन्त गुण पर्यायों की यह क्रमिक “स्यात्” या “कथंचित्” शब्द के माध्यम से की जाती है। सत्य को खण्डशः जानने का यह प्रमुख साधन है। वीतरागी होने पर यही सत्य अखण्ड और युगपत् अवस्थित व भाषित हो जाता है।

हम यह अनुभव करते हैं कि कभी-कभी शब्द कुछ और और उसका अर्थ कुछ और हो जाता है। वास्तविक अर्थ मूलार्थ से हटकर सन्दर्भ को भी छोड़ देता है। यही सामाजिक और वैयक्तिक संघर्ष का उत्स है। अभिव्यक्ति का मूल साधन भाषा तो है ही पर अपनी अनुभूति को अधिक से अधिक पूर्णता और विवादहीनता के साथ अभिव्यक्त किया जा सके, यह आवश्यकता उठ खड़ी हो जाती है। महावीर ने इसी समस्या को, संघर्ष के उत्स को विभज्यवायं च वियागरेज्जा कह कर विभज्यवाद अथवा सापेक्षवाद की बात कह दी।

सापेक्षिक कथन दूसरों के दृष्टिकोण को समान रूप से आदर देता है। खुले मस्तिष्क से पारस्परिक विचारों का आदान-प्रदान करता है। प्रतिपाद्य की यथार्थवत्ता प्रतिबद्धता से मुक्त होकर सामने आ जाती है। वैचारिक हिंसा से व्यक्ति दूर हो जाता है। अस्तित्व-नास्ति के विवाद से मुक्त होकर नयों के माध्यम से प्रतिनिधि शब्द समाज और व्यक्ति को प्रेम पूर्वक एक प्लेट फार्म पर बैठा देते हैं। चिन्तन और भाषा के क्षेत्र में न या सियावाय वियागरेज्जा का उपदेश समाज और व्यक्ति के अन्द्वेन्द्रों को समाप्त कर देता है, सभी को पूर्ण न्याय देकर सरल, स्पष्ट और निर्विवाद अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त कर देता है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने उदधाविव समुदीर्ण-स्वयिवयि नाथ ! दृष्टयः कहकर इसी तथ्य को अपनी भगवद् स्तुति में प्रस्तुत किया है। हरिभद्र की भी समन्वयात्मक साधना इस संदर्भ में स्मरणीय है—

भववीजांकुरजनना, रागाद्या : क्षममुपागता यत्य ।

ब्रह्म वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्य ॥

संघर्ष का क्षेत्र दर्शन ही नहीं, व्यवहार भी होता है। दोनों पक्षों में समन्वय—साधना की अपेक्षा होती है सामाजिक साधना के लिए, विषमता को दूर करने के लिए। लोकेषणा के कारण धर्म का संयम किंवा आचार पक्ष गौण हुआ तथा उपासना पक्ष प्रबल होता गया। उपासना में पारलौकिक विविध आश्वासनों का भण्डार रहता ही है पुरुषार्थ की भी उतनी आवश्यकता नहीं रहती। इसी क्रम में धार्मिक चेतना कम होती चली जाती है, उपासना तत्त्व बढ़ता चला जाता है, और हम मूल को छोड़कर अन्यत्र भटक जाते हैं। कदाचित् यही स्थिति देखकर सोमदेव ने समन्वय की भाषा में गृहस्थ के लिए दो धर्मों की बात कह दी—लौकिक धर्म और पारलौकिक धर्म लौकिक धर्म लोकाश्रित है और पारलौकिक धर्म आगमाश्रित है।

व्यवहार की भाषा किंवा अनुभूति की शास्त्रीय भाषा का जामा पहनाकर समाज को एक आन्तरिक संघर्ष से बचा लिया सोमदेव ने। यह उनकी समन्वय साधना थी। इसी साधना के बल पर साधक समत्व की साधना करता है चाहे वह सामाजिक क्षेत्र हो या राजनीतिक, अनेकान्त के अनुसार सर्वथा विरोध किसी भी क्षेत्र में होता नहीं। इसलिए विरोध में भी अविरोध का स्रोत उपलब्ध हो जाता है। मैं सप्त-भगियों को चिन्तन के क्षेत्र में पड़ाव मानकर चलता हूँ। वे समन्वय की विभिन्न दिशाएँ हैं सर्वोदय की मूल भावना से उनका जुड़ाव बंधा हुआ है।

अनेकान्तवाद और सर्वोदयवाद समाज के लिए वस्तुतः एक संजीवनी है। वर्तमान संघर्ष के युग में अपने आपको सभी के साथ मिलने-जुलने का एक अमोघ अनुदान है। प्रगति का नया एक साधन है। पारिवारिक विद्वेष को शान्त करने का एक अनुपम चिन्तन है, अहिंसा और सत्य की प्रतिष्ठा का केन्द्र बिन्दु है। मानवता की स्थापना में नींव का पत्थर है। पारस्परिक समझ और सह-अस्तित्व के क्षेत्र में एक सबल लेंप-पोष्ट है। इनकी उपेक्षा विद्वेष और कटुता का आवाहन है। संघर्षों की कथाओं का प्लेट है। विनाश उसका क्लाइमेक्स है विचारों और दृष्टियों की टकराहट तथा व्यक्ति-व्यक्ति के बीच खड़ा हुआ एक लम्बा गेप वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों की सीमा को लांघकर राष्ट्र और विश्व-स्तर तक पहुँच जाता है। हर संघर्ष का जन्म विचारों का मतभेद और उसकी पारस्परिक अवमानना से होता है। बुद्धिवाद उसका केन्द्र बिन्दु है।

अनेकान्तवाद बुद्धिवादी होने का आग्रह नहीं करता। आग्रह से तो वह मुक्त है ही पर इतना अवश्य कहता है कि बुद्धिनिष्ठ बनो। बुद्धिवाद खतरावाद है विद्वानों का वाद है पर बुद्धिनिष्ठ होना खतरों और संघर्षों से मुक्त होने का अकथ्य कथ्य है। यही सर्वोदयवाद है। इसे जैनवाद कहना सबसे बड़ी भूल होगी। यह तो मानवतावाद है जिसमें अहिंसा, सत्य, सहिष्णुता, समन्वयात्मकता, सामाजिकता सहयोग, सद्भाव और संयम—जैन-आत्मिक गुणों का विकास सन्तुष्ट है। सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थान भी इसकी सीमा से बहिर्भूत नहीं रखे जा सकते। व्यक्तिगत परिवारगत, संस्थागत और संप्रदायगत विद्वेष की विषैली आग का शमन भी इसी के माध्यम से होना संभव है। अतः सामाजिकता के मानदण्ड में अनेकान्तवाद और सर्वोदयवाद खरे उतरे हैं।

इस प्रकार जीवन और सत्य के बीच अनेकान्तवाद एक धुरी का काम करता है और सर्वोदयवाद उसके पथ को प्रशस्त करता है। दोनों समस्यूत होकर जीवन को विशद, निश्चल, समास, निरूपद्रवी तथा निर्विवादी बना देता है। यही उसकी सार्वभौमिक उपयोगिता है।